# सेवड़ी रोटियाँ और जले आलू

हरि भटनागर

# सेवड़ी रोटियाँ और जले आलू

खुशी के उस क्षण को दर्ज कर पाना बहुत ही मुश्किल है। बस इन्हीं शब्दों में कहा जा सकता है कि जब नगीना सेठ के यहाँ से शादी का खाना बतौर 'बायना' भेजा गया तो वह उन चीज़ों को देखकर इतना ख़ुश हुई कि उसके मुँह में पानी आ गया। खाना क्या, तरह-तरह की चीज़ें थीं। पूड़ी, कचैड़ी, खस्ता कचैड़ी, चार-पाँच तरह की सब्जियाँ, रायता, बूँदी, काले जाम वगैरह-वगैरह। उसने जल्दी-जल्दी उन चीज़ों को समेटा और कमरे के उस कोने में जिसे रसोई कहा जा सकता है, क्योंकि इस जगह पर खाना बनता है, रखा। रखते-रखते उसने एक बार फिर उन चीज़ों को ग़ौर से देखा जो तरह-तरह की ख़ुशबू बिखरे रही थीं। उसकी आँखें फैली की फैली रह गईं। ज़ाहिर है कि

उसके मुँह में फिर पानी आ गया। लेकिन उसने अपने को सँभाला। हालाँकि वह सोच चुकी थी कि उन चीज़ों को चख ज़रूरी लेगी। उसने बच्चे को भी कुछ नहीं दिया। वह ज़िद कर बैठा। उसने उसे समझाया कि बाबू के आने पर देगी। वह ठनक गया। ज़मीन पर लोट गया। उसने उसकी परवाह नहीं की।

जिस धुन के हवाले वह हो गई थी, उसमें बहते हुए उसने एक बार फिर सोचा कि जब आदमी आएगा तो चैंक जाएगा। साफ़-सुथरा घर और स्वादिष्ट भोजन देखकर तो भैरा जाएगा। यह सोचते-सोचते उसने झाड़ू उठाई और कमरा झाड़ने लग गई। बहुत छोटा कमरा था। दस फिट लम्बा। दस फिट चैड़ा और क़रीब-क़रीब आठ फिट ऊँचा। लेकिन उसमें न लम्बाई दिखती थी, न चैड़ाई और न ही ऊँचाई।

अगड़म-बगड़म चीज़ों ने जगह को लील लिया था। दो खाटें थीं जिनकी बाध झूलती हुई ज़मीन को छू रही थी। खाटों के ऊपर याने सिर पर रजाई, कथरी, कम्बल लटक रहे थे। खाटों के बाजू से रसोई शुरू होती थी। सैकड़ों डिब्बे-डिबियों साबुत, टूटे-फूटे और ज़ंग खाए का हुजूम शुरू होता था। चूल्हे के आगे राख और कोयले का ढेर था। चूल्हे पर जली-अधजली लकड़ियाँ रखी थीं। खाना बन चुकने के बाद चूल्हे पर लकड़ियाँ इसलिए रख दी जाती थीं कि गीली लकड़ियाँ सूख जाएँ। चूल्हे के सामने वाले कोने पर मोरी थी जिसमें कीचड़-काई बड़ा-सा मुँह बाए थी। मोरी के मुहाने पर आठ-दस ईंटें जमाई गई थीं जो क़रीब-क़रीब पानी-कीचड़ में आधी डूबी थीं। मोरी के ऊपर तांण में अल्लम-गल्लम चीज़ें याने चार-छै चैले, पन्द्रह-बीस कण्डे,टूटे छाते, जर्जर रजाइयाँ, ईंटें भरे थे।

मोरी से थोड़ा हटकर, खाट के सामने वाली दीवार पर देवी-देवताओं और फ़िल्मी हीरो-हीरोइनों के कैलेण्डरों का रेला था। दीवार कहीं से नज़र नहीं आती थी। लगता था, कैलेण्डर की दीवार है। धुएँ और सीलन से कैलेण्डरों का असली रंग-रूप दब-मिट-सा रहा था। कैलेण्डरों के बीच में एक आला था, तेल से चीकट होता हुआ। आले के कोर पर ही संध थी जिसमें बीसों जली-अधजली अगरबत्तियाँ और उसकी सींकें खुसी थीं। आले में फ्रेम जड़ा शंकर भगवान का चित्रा था जिसे आधा कीड़े खा गए थे, आधा जो बचा था उसे पानी के छींटों, अगरबत्तियों के धुँओं और चन्दन-रोली के छापों ने ढँक लिया था।

दरवाज़े पर बच्चे का झूला था जिसकी डोरियाँ गाँठदार थीं।

वह कमरा झाड़ती जा रही थी और कूड़ा-दर-कूड़ा निकलता जा रहा था। खाट के नीचे कूड़ा, डिब्बे-डिबियों पर कूड़ा, मोरी पर कूड़ा, किवाड़ के नीचे कूड़ा। वह हैरान रह गई कि घर में इतना कूड़ा आख़िर आया कहाँ से? और वास्तव में, घर में जैसे कूड़े के

अलावा कुछ था ही नहीं! ओढ़ने-बिछौने, खाट, बर्तन-भाण्डे सब कूड़ा हो रहे थे। कूड़े-करकट को झाड़कर निकाला जा सकता है, इन सामानों को कैसे निकाला जाए? नहीं, इन सामानों को वह नहीं फेंक सकती! वे उसकी गृहस्थी हैं! बीसों साल की जमा पूँजी! उन्हीं ने उसे जिलाए रखा। अब वह उन्हें फेंक क्यों दे? सब सामानों को वह झाड़-पोंछकर जमाने लगी। खाटें उसने बाहर धूप में पटकीं। उन पर बीसों लट्ठ जमाए। खटमलों का बड़ा-सा कुनबा था जो निकाले जाने पर खाट के नीचे मचलता-सा नाराज़गी जतला रहा था। गालियाँ देते हुए उसने सबको पैर के अँगूठे से मसल डाला और खाटों को फिर उन्हीं जगहों पर जमा दिया। रसोई के बर्तन-भांडे और डिब्बे-डिबियों को रगड़-रगड़कर साफ किया। राख और कोयले हटाए। मोरी पर झाड़ू फेरी।

दीवार के कैलेण्डरों और आले के भगवान जी को उसने नहीं छुआ। लग रहा था कि उसने छुआ तो सब कुछ ढह जाएगा! और फिर दीवार को ढँकने के लिए कुछ चाहिए। कहाँ से लाएगी वह कैलेण्डर? फिर ये कैलेण्डर उसके अपने आदमी की पसन्द हैं। इन सबको देखकर थकान में टूटे होने के बाद भी कभी-कभी वह बदमाशी से मुस्कुराता है। अजीब तरह की सिसकारियाँ भरता है। और उसे कैलेण्डर की हीरोइन कह बैठता है। प्यार करता है। चूमता है। ऐसा न हो कि कैलेण्डरों को हटाते ही वह आदमी के दिल से हटा दी जाए! ऐसा सोचते ही वह घबरा गई। लेकिन कैलेण्डरों को सही-सलामत देखकर ख़ुश हुई। उसने उनके आगे सिर नवा दिया।

सिर नवाते-नवाते जिस बात का ख़्याल उसे आया, वह था गोबर से घर लीपना। लीप देने से घर का हुलिया बदल जाएगा। यह सोचते ही वह घर से बाहर निकली और पड़ोस से गोबर ले आई और फुर्ती से फर्श लीपने लग गई। सफ़ाई के बाद भी झींगुर-कीड़े थे जो उछल-कूद लगा रहे थे। गोबर-मिट्टी से उसने कोने-अँतरों के छेद-बिल बन्द कर दिए लेकिन झींगुर-कीड़े थे जो खाट और जहाँ-जहाँ जगह मिलती जाती थी, समाते जा रहे थे। जैसे सामानों की तरह उनका भी वजूद घर से जुड़ा है। वे हटाए नहीं जा सकते। कीड़ों को उसने अँगुलियाँ चटकाकर 'उच्छिन्न' हो जाने का श्राप दिया और मोरी पर आकर हाथ धोने लग गई। गोबर-मिट्टी छूटते ही हाथ साफ़ निकल आए थे। उनमें चमक आ गई थी। उसने चूड़ियों में फँसी गोबर-मिट्टी निकाली और कुहनियों तक हाथ धोया। कुहनियों को धोते-धोते उसे यकायक गुदगुदी-सी होने लगी। उसका आदमी जब उसे प्यार करता है तो कुहनियों पर हाथ फेरता है,धीरे-धीरे। वह मुस्कुरा दी। आज वह आदमी को प्यार करेगी। उसकी कुहनियों पर हाथ फेरेगी। यह सोचते ही उसकी आँखों के सामने आदमी की शक्ल तैर गई। आदमी प्रेस में कम्पोजीटर है। और

बहुत ही दुबला-पतला। हड्डियों का ढाँचा। लगता कि अन्तहीन काम ने उसकी हड्डियों का माँस गला दिया हो और उसकी जगह थकान और टूटन भर दी हो। हर वक़्त वह निढाल रहता और उनींदा। उसके सूखे और भावहीन चेहरे पर आँखें नींद से बोझिल और कीचड़ भरी होतीं मानो प्रेस के काम ने उन्हें सोने और कीचड़ साफ़ न करने की सज़ा दे रखी हो। घर में वह हर वक़्त खाट पर पड़ा रहता। मुँह बाए, खुली पलकों, राल टपकाता, सोता रहता। जागता तो उनींदी आँखों अपलक कहीं खोया रहता।

यकायक उसे लगा कि आदमी आ गया। लेकिन सिर झटककर सोचा कि नहीं, इस बखत कैसे आ जाएगा! अभी तो संझा हो रही है। वह तो रात को, आधी रात को आता है। साइकिल खड़खड़ाता। घण्टी टुनटुनाता।

झाँककर देखा तो पड़ोस का आदमी था। साइकिल खड़खड़ाता निकला था।

साँझ होते-होते उसने घर क़रीने से सजा दिया था। जब उसने ढिबरी जलाई तो बच्चे का ध्यान आया जो बाहर ज़मीन पर सो गया था। ध्यान आया कि उसने तो उसे कुछ खाने को नहीं दिया। यह सोचते ही वह भीग-सी गई अन्दर तक। उसने बच्चे को उठाया और उस पर चुम्बनों की बौछार-सी कर दी। और रुआँसी हो आई। मन हुआ कि बच्चे को जगा दे और खाना खिलाए। लेकिन यह सोचकर रहने दिया कि बाप के आने पर जगाएगी, तभी खा लेगा। अभी मुमकिन है, जगने पर रोने लग जाए। उसने बच्चे को खाट पर लिटाया और बच्चे के ख़्याल में डूबी-डूबी बाहर, ड्योढ़ी पर आकर बैठ गई।

घर की साफ-सफाई की उसे इन्तहा खुशी थी। उस पर नगीना सेठ के घर से आया खाना इस सोच से उसकी भूख जाग गई एकाएक। लगा, पेट में आँतों ने करवट ली। खौलता पानी दौड़ गया। उसने तो सबेरे से कुछ नहीं खाया।

पेट पर हाथ फेर, घुटनों पर हथेलियाँ टिकाकर वह उठी और बच्चे के पास आ खड़ी हुई। बच्चा उघारी खाट पर तेज़-तेज़ साँस लेता मुँह बाए सो रहा था। चमड़ी उसकी गंदुमी और इतनी झीनी थी कि सीने की एक-एक हड्डी गिनी जा सकती थी। साँस के साथ नीचे दबकर ऊपर हड्डियों से चमड़ी ऐसे टकराती कि लगता, चमड़ी न होकर बरसाती पन्नी हो। बच्चे की इस हुलिया से उसे कचोट हुई कि अभी तक वह बच्चे से ग़ाफिल क्यों रही? काफ़ी देर तक खड़े-खड़े वह बच्चे में डूबी रही। फिर बच्चे के बग़ल बैठ गई। फिर लेट गई। बच्चे के सिर पर हाथ फेरते-फेरते खर्राटे भरने लगी।

बाहर कुत्ते के भौंकने से उसकी नींद टूटी तो चैंककर उठ बैठी। रात गाढ़ी हो रही थी। कमरे में मच्छरों का हल्ला तेज़ हो गया था।

एक पल को बाहर आ खड़ी हुई तो बहुत बड़ा चाँद दिखा जो काँपता हुआ पेड़ों के ऊपर उठ रहा था और इतने क़रीब लग रहा था जैसे उसके घर में घुस आएगा।

थोड़ी देर में साइकिल की घण्टी टुनटुनाई। साइकिल खड़खड़ाई। उसका आदमी आ गया था। रोज की तरह वह एकदम निढाल लग रहा था जैसे साइकिल और दिनभर के काम ने उसका सत्त्व खींच लिया हो। इसके बाद भी वह उनसे किसी तरह जूझता घर तक आ पहुँचा था।

दीवार से साइकिल टिका वह झुके कन्धों पलभर को खड़ा रहा। स्थिर-सा। मानों साइकिल ने उसे थका दिया हो और अब वह उससे राहत पाया हो। गहरी साँस छोड़ता, वह बढ़ा, अपने को घसीटता हुआ-सा और चूल्हे के सामने आ बैठा। और थकी-उनींदी आँखों खाने का इन्तज़ार करने लगा। जैसे कह रहा हो कि जल्दी खाना दे, नहीं तो वह यहीं सो जाएगा।

पत्नी ने हुलसते हुए जब थाली सजाकर दी तो उसने सूनी आँखों खाना देखा और सब-कुछ अपनी लम्बी हड़ीली अँगुलियों से मीड़ डाला और सुस्त हाथ से बड़े-बड़े कौर बनाकर धीरे-धीरे खाने लगा। चपर-चपर। झपकते हुए। लग रहा था कि हाथ में दम ही न हो, जबरदस्ती मुँह तक ले जा रहा हो।

पत्नी हैरत में पड़ गई। सोचा कुछ था और हो कुछ रहा था। उसके दिल में आग-सी जलने लगी। लेकिन उसने जब्त किया। ढिबरी की पीली रोशनी में आदमी को देखती जा रही थी जो लस्त-सा खाने से जूझ रहा था। आँखें बन्द थीं। हाथ था जो मशीनी तौर से मुँह तक जाता और मुँह था जो हाथ के आते ही मशीनी तौर से खुल जाता था। यह प्रक्रिया काफ़ी देर तक चलती रही। जब हाथ को थाली में कुछ नहीं मिला तो उसने मुँह खोला और छत की ओर करके उसमें ढेर-सा पानी डाला। इसके बाद उसने थाली में हाथ धोए, कुल्ला किया, पैजामे के पांयचे से झुककर नाक पोंछी और लम्बी डकार लेकर खाट पर किसी सूखी डाल की तरह गिर पड़ा। और धीरे-धीरे आँखें मींच लीं।

पत्नी का गुस्सा आसमान पर था। उसने उसे झिंझोड़ डाला सेठ नगीना के यहाँ से पकवान आए, तू कुछ बोला ही नहीं, चर गया जानवरों की तरह .....

आदमी चैंककर कुहनियों के बल उठता, आश्चर्य से बोला- सेठ नगीना के यहाँ से पकवान! जैसे उसे विश्वास न आ रहा हो, फिर यकायक बोला तूने दिए क्यों नहीं?

पत्नी आँखें तरेर कर झुँझलाते हुए बोली- और तूने खाना क्या? पकवान ही तो थे!!!

आदमी ने कुहनियाँ ढीली छोड़ दीं। मुरदार आवाज़ में कहा मुझे तो ऐसा कुछ नहीं लगा। उसने बुरा-सा मुँह बनाया सेवड़ी रोटियाँ और जले आलू के सिवा .....

औरत का दिल बैठ गया। उसने मत्था पीट लिया और रो पड़ी।